सिख, हिन्दू और नानक-धर्म

कुछ पहले श्रीअकाल तख्त के जत्थेदार ने कहा था कि बिना इजाजत कोई सिख संगठन नहीं बना सकता। उन्होंने स्पष्ट नहीं किया कि यह मनाही कैसे संगठन के लिए है – राजनीतिक या आध्यात्मिक? अभी सौ साल पहले तक सिखों को हिन्दुओं से भी अलग नहीं समझा जाता था। अब हाल ये है कि सिखों में भी 'आधिकारिक' या 'अनाधिकारिक' का भेद हो रहा है! आखिर यह अलगाव कहाँ तक जाएगा? क्या यह गुरूओं की शिक्षा अनुरूप है? क्या गुरू नानक की शिक्षाओं के प्रचार के लिए भी अनुमति लेनी पड़ेगी? यह सब लाभकारी है या हानिकारक? हमारे वरेण्य चिंतक राम स्वरूप ने इन प्रश्नों पर विचार करने का आग्रह किया था, जिन की अभी जन्मशती चल रही है। उन के विचारों पर मनन करना हर तरह से आवश्यक है।

रिचर्ड फॉक्स ने अपने शोध-ग्रंथ 'लायन्स ऑफ पंजाब: कल्चर इन द मेकिंग' (1985) में लिखा है कि 19वीं सदी तक सिखों की अलग या समरूप पहचान नहीं थी। उन्हें हिन्दुओं से अलग देखना असंभव था। गुरू नानक की शिक्षाओं का पालन करते चार सौ वर्ष बीत जाने के बाद यह स्थिति थी! क्या वह कोई भूल थी? यह कौन कहेगा कि गुरू नानक और सभी गुरुओं से अधिक समझ विगत सौ वर्ष के सिख नेताओं को है! दशम् गुरु से पहले तक 'खालसा' संप्रदाय जैसी बात भी न थी। अत: केवल खालसा को सिख, और अलग मानना कुछ वैसा ही होगा, जैसे स्वयं गुरू नानक एवं प्रथम नौ गुरुओं को अलग कहना। यदि गुरू नानक के बाद 19वीं सदी के अंत तक सिखों ने अपने को अलग माना होता, तो इस के विवरण मिलते। किन्तु देशी छोड़िए, कर्नल पोलियर, ब्राउन, फोर्सटर, जॉन माल्कम, एच. एच. विल्सन, आदि विदेशियों के विवरणों में भी ऐसा कुछ नहीं है।

बाद में, ब्रिटिश शासकों ने ही सिख-धर्म को एक अलग स्थापित करने में रुचि ली। उन्होंने हिन्दू और सिख की अलग-अलग परिभाषाएं गढ़ीं। घोषित किया कि हिन्दू का मतलब है – मूर्तिपूजा, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, विविध अंधविश्वास। जबकि स्वयं भारतीय ज्ञान-परंपरा में 'मूर्तिपूजा', 'ब्राह्मणवाद', 'अनेकेश्वरवाद', 'जातिवाद', जैसी शब्द-श्रेणियाँ (केटेगरी) कहीं नहीं है। अर्थात्, यही सब हिन्दू धर्म है, ऐसा स्वयं हिन्दू न जानते, न मानते हैं। ये श्रेणियाँ क्रिश्चियनिटी के विचार-व्यवहार में हैं, जिन के आधार पर वे दूसरों को हीथेन, आदि कह कर नीच, मूढ़ समझते थे। वही उन्होंने यहाँ बल-पूर्वक हिन्दुओं पर लागू किया। कि मूर्तिपूजा ही हिन्दू धर्म की पहचान है। बस। स्वयं हिन्दू धर्म क्या कहता है, यह बात उपेक्षित की गई।

उसी तरह, सिख को भी अलग, सीमित करने का उपाय किया गया। अंग्रेज अधिकारियों ने 1891 ई. में

परिभाषा बनाई : "एक सच्चे सिख की पहचान है कि वह खालसा का सदस्य हो, गुरू गोविन्द सिंह के आदेशों का अनुयायी।" इस प्रकार, उस बाह्याचार को केंद्रीय महत्व दिया गया, जिस से सिख हिन्दू को अलग दिखते हों। बल्कि खालसा सिख को सहजधारियों, नानकपंथियों, जैसे दूसरे सिखों से भी विशिष्ट बनाते हों। इस तरह, खालसा का अलगाव बढ़ाया गया। यह सब यूरोपियनों के अज्ञान, अंधविश्वास तथा राजनीतिक उद्देश्यों से किया गया।

दरअसल, 'अलग' धर्म वाली सारी जिद चर्च-क्रिश्चियनिटी की अपनी अवधारणाओं पर आधारित है। वहाँ ईश्वर (गॉड) अलग, और भौतिक सत्ता है जो मनुष्यों से ऊपर कहीं रहता है। वही धारणा हिन्दू, सिख, विचारों पर भी जबरन लागू की गई। इसीलिए स्वयं गुरू-ग्रंथ में वर्णित अवधारणाओं को उपेक्षित कर केवल बाह्याचार (केश-कृपाण-कड़ा, आदि) को केंद्रीय तत्व बताकर विरोधी, प्रतियोगी धर्मों की परिकल्पना लागू कर दी गई।

इसे चर्च-मिशनरियों ने विशेष रूप से बढ़ावा दिया। उन्होंने प्रचार किया कि सिख धर्म तो उसी तरह एकेश्वरवादी है, जैसे क्रिश्चियनिटी। कि सिख मूर्तिपूजक नहीं होते। कि उन का धर्म इस्लाम के निकट है, आदि। इस बहाने मिशनरी मूलतः अपने मत की श्रेष्ठता का दावा कर रहे थे। साथ ही, हिन्दू समाज को तोड़ रहे थे। यह सब उन की धर्मांतरण योजनाओं के अनुकूल था।

यह वैचारिक-राजनीतिक प्रक्रिया 1870 ई. के लगभग आरंभ हुई। एक तो सिखों को हिन्दुओं से अलग करना। दूसरी ओर, स्वयं सिखों में भी केवल केशधारियों को ही सिख मानना। इस में नानक की वे सभी शिक्षाएं किनारे की गईं जो सनातन वैष्णव धारा से अभिन्न थीं। यह वैसी 'शुद्धतावादी', एकांतिक प्रवृत्ति थी जैसे क्रिश्चियनिटी में है। जिस में एक संप्रदाय दूसरों को गलत ही मानकर मिटाने, हराने की कोशिश करता है।

आज गुरुद्वारों का संगठन एकाधिकारी सत्ता-संगठन सा हो गया है। सौ साल पहले तक ऐसा नहीं था। अधिकांश गुरुद्वारों का संचालन नानकपंथी उदासी संप्रदाय करता था। समय के साथ उन में जहाँ-तहाँ भ्रष्टाचार आ गया। तब उन्हें हटाकर खालसा ने गुरुद्वारों को अपने अधिकार में लिया। उन्होंने 1920 ई. में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी (एस.जी.पी.सी.) बनाई, और सभी सिख मंदिरों-गुरुद्वारों को अपने हाथ लेना शुरू किया। इस में कई जगह हिंसा भी हुई। फिर ब्रिटिश सरकार ने 1925 ई. में कानून बना कर गुरुद्वारों पर खालसा एकाधिकार को कानूनी रूप दे दिया।

उस एक कदम ने खालसा को स्वतंत्र, ताकतवर समुदाय का स्थाई रूप दे दिया। हिन्दू-सिख जनता की श्रद्धा पर एकछत्र कानूनी अधिकार ने भी खालसा को वर्तमान रूप दिया। धीरे-धीरे उन्हें हिन्दुओं से ही नहीं, बल्कि अन्य सिखों से भी अलग बनाने में एक निहित, शुद्ध सांसारिक, उद्देश्य पैदा हो गया। आध्यात्मिक विचारों के भेद का स्थान नगण्य हो गया।

यह सब दसो गुरुओं की शिक्षाओं से कितना मेल खाता है, इस पर स्वयं सिखों को विचार करना होगा। यदि उन के बीच विगत सौ वर्षों में आध्यात्मिक तत्व की कीमत पर सांसारिक लाभों को महत्ता मिली है, तो उन्हें इस की लाभ-हानि का हिसाब कभी करना ही होगा। जिस तरह 'अनुसूचित' जातियों की लिस्ट (शिडयूल) बनाकर उन्हें अन्य हिन्दुओं से अलग बनाया गया, कुछ वही प्रक्रिया सिखों को अलग करने

में, और सिखों में भी उदासियों, सहजधारियों, आदि को किनारे करने में अपनाई गई।

जो आज सिख विलगाव (एलीनियेशन) की बात करते हैं, उन्हें सोचना चाहिए। सिखों का विलगाव उन के अपने आध्यात्मिक भटकाव का ही ऊपरी रूप है। उन्हें सोचना होगा कि क्या उन्होंने कुछ बाह्याचारों को ही धर्म का आदि-अंत मान लिया है? क्या इस में उस मूल दर्शन की उपेक्षा हो रही है जो गुरू-ग्रंथ में आमूल सजा है? वह दर्शन उस शाश्वत धर्म विरासत का अंग है जिस से भारतीय हृदय-मानस समृद्ध होता रहा है। उपनिषद, रामायण, महाभारत, आदि से कृत्रिम विलगाव ही उस क्षोभ का मूल है जिस से कुछ सिख अपने को 'अलग' पाते हैं।

यह अलगाव ही उन पर थोपा हुआ है। सौ वर्ष पहले तक यह प्रश्न भारतीय समाज के लिए अनर्गल था कि उस दर्शन से आनन्दित होने वाले, तथा राम, कृष्ण की भक्ति, शब्द-कीर्तन का रस उठाने वाले हिन्दू हैं या सिख? तब हम समझते थे कि राम, कृष्ण, हरि, सब के हैं – किसी समुदाय विशेष के नहीं। आज के सिख उसी प्रश्न से अपना अस्तित्व जोड़े बैठे हैं, इसीलिए बाह्याचारों पर निर्भर हैं। क्या इस से धर्म ही वैकल्पिक नहीं हो गया? उन्हें इस प्रश्न का सामना करना चाहिए। साथ ही, हिन्दुओं को भी अपने दब्बूपन, अज्ञान, और झूठे नेताओं, विचारों, संगठनों के अंधानुकरण का हिसाब करना होगा, जिस से वह सब सरलता से होता गया, और आज भी हो रहा है। मूर्खता को होशियारी समझने का बचकानापन उन में बढ़ता गया है।

भारतीय आध्यात्म एक अजस्त्र बहता स्त्रोत है, जिस से सब की प्यास बुझती है। उस से अपने को करके कोई भारतीय क्षुब्ध हुए बिना कैसे रह सकता है! चाहे वह ताकतवर सिख हो या विचारहीन हिन्दू।

विगत सौ साल में अलगाव और श्रेष्ठता-हीनता ग्रंथियों ने सिखों या हिन्दुओं के आध्यात्मिक, चारित्रिक जीवन को क्या हानि-लाभ पहुँचाया – यह विचारणीय है। इस में गुरू नानक की शिक्षाएं भी हमारी कसौटी हैं। यदि ऐसा न करें, तो फिर गुरुओं की जयंती मनाने का अर्थ ही क्या?

साभार – https://www.nayaindia.com/ से